ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-4* Issue-11* December- 2019
Innovation The Research Concept

जनकवि बाबा नागार्जुन

सारांश

आधुनिक हिन्दी काव्य लेखन की परम्परा में नागार्जुन एक बड़ा नाम है। इनकी कविताओं से गुजरना अपने में एक बड़ा सुखद अनुभव है। इनकी कविताएँ भारतीय जनमानस की यथार्थता की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। आधुनिक मानव की त्रासदी, पीड़ा और उसकी जिंदगी के खट्टे–मीठे, कड़वे और तीखे जीवनानुभव का पूरा ब्यौरा नागार्जुन की कविता है। वे अपने प्रति लापरवाह पर जनता के सच्चे हितैषी थे। नागार्जुन कविता लिखते भर नहीं हैं अपितु कविता में खुद को जीते भी हैं। इनकी कविता की जमीन अत्यंत विस्तृत है जिसमें केन्द्रीयता उस सामाजिक यथार्थ की है, नार्गाजुन जिसके द्रष्टा ही नहीं बल्कि भोक्ता भी रहे हैं। इनकी रचनाएँ संवेदनात्मक स्तर पर लोगों को जोड़ती हैं।

बिजेंद्र कुमार
हिन्दी विभाग
माईकल मधुसूदन कॉलेज
दुर्गापुर,
पश्चिम बंगाल, भारत

आज जब लोकतंत्र के नाम पर हमारे देश की शासन व्यवस्था पूँजीवाद और साम्राज्यवादी शक्तियों का पोषण कर रही हैं तो वहीं भारतीय आम जनता विपन्नता के दर्द से कराह रही है। ऐसे में नागार्जुन का स्मरण सहज ही आ जाता है। नागार्जुन का संघर्ष इसी लोक जन का संघर्ष है। शोषण मुक्त समाज की जो कल्पना सदियों से मानव जाति का लक्ष्य रहा है उसे नागार्जुन अपनी कविता में साकार करते हैं– "प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ/बहुजन समाज की अनुपल प्रगति से निमित्त हूँ।"[1]

प्रतिबद्ध रचनाकार नागार्जुन ने अपनी कविताओं में भारतीय जनता के उत्पीड़ित, उपेक्षित, शोषित, मेहनतकश जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति बड़ी आत्मीयता के स्तर पर की है। मूलतः ऐसा तभी संभव बन पाता है जब साधारण आदमी के दुख–दारिद्रय को अपना जीवन समझा जाये। कवि खुद अपनी एक कविता 'रवि ठाकुर' में अपने वैयक्तिक जीवनानुभव को व्यक्त करते हुए खुद को 'दबी हुई दूब' के रूपक के संदर्भ में प्रस्तुत किया है–

"पैदा हुआ था मैं एक दीन–हीन अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में।" [2]

निस्संदेह नागार्जुन बचपन से ही अभावों के बीच पले, बड़े हुए कवि हैं। कष्ट और पीड़ा उनके जीवन के सहज सहचर हैं। ये इससे प्रभावित ही नहीं होते बल्कि इसी से इनकी कविता को शक्ति मिलती है। "मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का"– में 'दबी हुई दूब' का मतलब यहाँ शोषित और उत्पीड़ित जनता से है। यानी कवि आमजन के जीवन के दुख–दर्द को नजदीक से सिर्फ देखा और परखा ही नहीं प्रत्युत स्वयं झेला भी है। यही कारण है कि उन्होंने बड़ी तल्खी से मानवीय जीवन के समसामायिक स्थितियों और जीवन घटनाओं को अपनी रचनाओं में बेबाक अभिव्यक्ति दी है। डा0 प्रकाशचन्द्र भट् का यह कथन नागार्जुन के जीवन की वास्तविक व्याख्या है–"नागार्जुन ऐसे साहित्यकार हैं, जो अभावों में ही जन्में हैं। पीड़ित वर्ग के कष्टों को इन्होंने स्वयं झेला है।"[3] वाकई नागार्जुन का यह भोगा हुआ यथार्थ ही है जो उनके लेखन को अत्यधिक प्रामाणिक व जीवंत बनाता है। इनकी कविता समाज की विसंगतियों, विषम–परिस्थितियों तथा जीवन के तमाम उठा–पटक के बीच का प्रतिफलन है। यही वजह है कि वे निराला के अनुरूप दुख ही जीवन की कथा रही कहना नहीं भूलते हैं।

भारतीय समाज में आजादी के पहले से लेकर आज तक जो कुछ भी घटित हुआ है वह सब कुछ नागार्जुन की कविता में यथावत मौजूद है। शोषण, हिंसा, राजनीति, भ्रष्टाचार, सामाजिक दुराचार सब नागार्जुन के यहाँ उपलब्ध है। समय की मांग के तहत एक ओर उन्होंने राजनीतिक कविताएँ लिखीं जो तत्कालीन घटनाओं पर आधारित हैं तो दूसरी ओर संघर्षशील मनुष्य की सुख–दुख की गाथा पर भी अपनी लेखनी चलाई। युगधारा, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखें, तुमने कहा था, हजार–हजार बाँहों वाली, इसी विषेषता से

प्रेरित हैं। उनकी कविता में किसान, मजदूर, कुली, रिक्शा चालक, ड्राइवर सब आते है। इन्हीं असाधारण लोंगो से मिलकर ही नागार्जुन कविता की जमीन तय करते हैं। नागार्जुन जब लिखते हैं–"जन कवि हूँ मैं क्यों चाटूँ थूँक तुम्हारी/श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बंदूक तुम्हारी।"[4] इससे साफ पता चलता है कि नागार्जुन जनकवि है। जनता के प्रति हो रहे तरह–तरह के अन्याय–अत्याचार के विरुद्ध नागार्जुन ने बड़े कौशलपूर्ण ढंग से एवं पूरी दक्षता के साथ आवाज बुलंद की है जो उनकी मानववादी विचारणा का एक विषिष्ट पहलू है। डॉ0 प्रमिला ने ठीक ही लिखा है–"नागार्जुन सजग, सचेष्ट समाज के प्रहरी हैं। वे समाज में अमूल–चूल परिवर्तन लाना चाहते हैं। वे समाज से, समाज के संघर्षो से, उसके सुनहलें भविष्य के निर्माण के प्रयत्नों से पूरी तरह प्रतिबद्ध है। वे सच्चे अर्थो में जनता के कवि हैं, जनकवि हैं।"[5] सामाजिक घात–प्रतिघात से क्षुब्ध, पीड़ा एंव दर्द को सहते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय आदमियों के प्रति समर्पित करने वाले ठीक त्रिलोचन की भांति भारतीय आदमी के चितेरे कवि हैं। ये मानव अनुभूतियों की विशिष्टता के नहीं, मानव अनुभूतियों की मार्मिकता के कवि है।

नागार्जुन ने समाज में हाशिए पर फेंके गए लोगों को जिस तरह से अपने काव्य का उपजीव्य बनाया है, जो सहानुभूति संवेदना के स्तर पर उनके प्रति दिखलाई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कवि उनका यथार्थ चित्र अंकित तो करता ही है साथ ही उनके समक्ष खड़ा होकर शोषण करनेवालों की बेखौफ खबर भी लेता है, सिर्फ कविता के स्तर पर ही नहीं वैयक्तिक जीवन तथा संघर्ष के स्तर पर भी। ऐसे में नागार्जुन सिर्फ जनता के मार्गदर्शक कवि नहीं है वरन व्यापक जीवन के और जिए जा रहे समय के सजग संवेदनशील कवि है। उनकी कविता का प्रधान मूल्य है जनता की मुक्ति, शोषण मुक्त समाजिकता, गंवाई संवेदना का खरापन। और इन जीवन मूल्यों को उन्होने संघर्षरत रहकर ही कमाया है।

नागार्जुन ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए लोगों को जीने का मकसद दिया। प्रत्येक कवि की तरह नागार्जुन की भी अपनी विचार धारा है और वह प्रगतिवादी विचारधारा है। जिसे 'घिन तो नहीं आती' कविता में महसूस किया जा सकता है। नागार्जुन ने मेहनतकश कुली–मजदूरों, ठेला खींचने वाले निम्नवर्ग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। दिन भर की थकान के बाद शाम को ट्राम में वापसी करने के क्रम में इनकी मुलाकात सफेद कपड़े पहने निम्नवर्ग से निकल कर गये बाबुओं से होती है। कुली मजदूरों के ठहाकें, पान खाई दांतो की मुस्कानों को देखकर आज संभ्रात बने ये बाबू लोग अपने को निम्नवर्ग से भिन्न मानते हैं। स्थिति ऐसी है कि अब मजदूरों के ठहाके, मुस्कानें इन्हें अखरती हैं। गंध तो दूर अब इन्हें देखकर ये बाबू किस प्रकार से मुँह बिचकाते है। नागार्जुन की यह कविता उनकी इस उच्चवर्गीय मानसिकता और तहजीब की पोल खोलती है– "सच–सच बतलाओ/अखरती तो नहीं इनकी सोहबत/जी तो नहीं कुढ़ता ?/घिन तो नहीं आती ?।"[6] जब–जब भी और जहाँ
भी जनता का शोषण होता है, नागार्जुन उसका विरोध ही नहीं करते बल्कि अपना पक्ष जनता के साथ जाहिर करते हैं। अजय तिवारी ने ठीक लिखा है–"नागार्जुन समाज के अंतर्विरोध को समझते हैं, इस अंतर्विरोध से जुड़े हुए अत्याचार और उत्पीड़न को अनुभव करते हैं, इसके लिए जिम्मेदार लोगों से तीव्र घृणा करते हैं और इस स्थिति को बदल कर न्याय और समता पर आधारित समाज की रचना करने वाली श्रमिक जनता से नाता जोड़ते हैं।"[7]

नागार्जुन के यहाँ वर्गीयचेतना बहुत गहरी है। वे श्रमिक वर्ग के सामने अभिजात वर्ग को खड़ा कर उस पर नुकीला व्यंग्य बड़े मासूमियत भरे शब्दों में करते है। इस कविता में कवि की वर्गीय चेतना को आसानी से समझा जा सकता है। जहाँ तक कविता का सवाल है– श्रमिक वर्ग और कुलीन वर्ग के बीच की दूरी, तल्खी साफ उभर कर आती है। कवि अभिजात्य वर्ग पर व्यंग्य में कहता है–"दूध सा सादा लिबास है तुम्हारा/निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने/बैठना था पंखे के नीचे, अगले डिब्बे में.....।"[8] वास्तविक रूप में नागार्जुन निम्नवर्ग के किसान–मजदूरों को ही देश का उन्नायक समझते हैं। कारण इन्हीं के हाथों से उत्पादित वस्तुओं को पूंजीपति वर्ग के बनें सभ्रांत लोग आसानी से ग्रहण करते हैं और बाद में इन्हीं का दोहरा शोषण भी करते हैं। उत्पादक वर्ग होकर भी वह अपने पैदावारों से हमेशा अवांछनीय रहता है। इन्हीं मजदूरों की यथार्थ स्थिति का जीवंत चित्रण करने वाली 'खुरदुरे पैर' कविता दृष्टव्य हैं–

"धस गये
कुसुम–कोमल मन में
गुट्ठल–घट्ठों वालें कुलिस कठोरपैर।"[9]

बड़े रचनाकार की कलात्मकता का यह प्रमाण ही है जो एक गरीब रिक्शा चालक के पैरों में भी सौंदर्य को खोज लेते हैं और उसी से मेहनतकश लोगों के जीवन की यर्थाथता का बोध भी कराते हैं। यानी साधारण तथा असाधारण दोनों सौंदर्य एक साथ इनकी कविताओं में सन्नहित दिखाई पड़ते हैं। नागार्जुन का यही सौंदर्यबोध ही इन्हें अन्य समकालीन कवियों से भी अलग करता है।

दरअसल नागार्जुन अपनी कविताओं में जनता की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं तथा जीवन मूल्यों से जुड़े सवालों को गंभीरतापुर्वक उठाया है। आज देश में मरने वालों की फेहरिस्त में रोज इजाफा हो रहा है पर यह पूँजीपति वर्ग के लिए और बात होगी परन्तु सच तो यह है कि कोई भूख से मरता है, कोई अकाल से, कोई बुखार से, तो कोई कालाज्वर से पर मरने वाला हर

आखिरी आदमी भूखा ही है। हमारे राष्ट्र के तथाकथित नेता यह सहजता से स्वीकार नहीं करते कि भला भूख से भी कोई मरता है। भूख की पीड़ा उनकी कविताओं में बार–बार व्यक्त हुई है। 'प्रेत का बयान' कविता में नागार्जुन की नजर ऐसे ही एक निर्धन वर्ग के प्राईमरी स्कूल के मास्टर पर जा टिकती है। देश के भविष्य के निर्माता शिक्षक वर्ग की स्थिति इस देश में कितनी दयनीय हो चुकी है। आर्थिक विपन्नता की मार से मरकर यमराज के सम्मुख अपने जीवन की बिनाशलीला को बयान करता हुआ वह मास्टर कहता है–"महाराज/सच–सच कहूँगा/नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के/.....पेशा से प्राईमरी स्कूल का मास्टर था।"[10] निस्संदेह भूख से मरनेवाला मास्टर आम जनता का प्रतिनिध पात्र है।

नागार्जुन समय सचेत रचनाकार रहे हैं। तभी तो नागार्जुन ने यह सत्य महसूस किया था कि वर्तमान दौर का आम–आदमी आर्थिक और राजनीतिक दोनो रूपों से कुचला जा रहा है। 'अकाल और उसके बाद' कविता में निम्नवर्गीय समाज की हकीकत, गरीबी, आर्थिक विपन्नताका साफ पता चलता है। यह कविता वर्गीय चेतना की सटीक व्याख्या है और आज का सच भी कि वोट की राजनीति में हमारे देश के नेताओं ने अकाल जैसी भयानक स्थिति को भी अपने स्वार्थ और लाभ के लिए नहीं छोड़ा है– "कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास/कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास ..... दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद।"[11] वाकई ऐसा कलात्मक दृश्य नागार्जुन जैसा बड़ा कवि ही हमें उपलब्ध करा सकता है। यह कविता ऊपर से जितनी सरल उतनी गहरी संवेदना, जिसमें समाज का सुन्दर विवेचन और विष्लेषण संभव बन पड़ा है।

तमाम असुविधाओं–व्यवधानों के बीच जीवनयापन कर रहे आमजनता के भीतर नागार्जुन परिवर्तन के आकांक्षी है। परिवर्तन का भाव भी वही रखता है जो पीड़ित है और नागार्जुन खुद ऐसे ही पीड़ित कवि है। जिसे साधारण जन की बेचैनी, दुख–दर्द देखा नहीं जाता है। नागार्जुन की कविता गरीब, शोषित, कृषक और पीड़ित जाति की आवाज बनकर उभरती है। प्रो0 रामचरण महेन्द्र नागार्जुन की कविताओं के संदर्भ में लिखते हैं कि – "नागार्जुन सर्वहारा कविता की धारा को तीव्र कर देते हैं। उनमें मजदूर वर्ग की संघर्षशील चेतना समुन्नत रूप में प्रकट हुई है। पूंजीवादी चट्टानों से टकराती, भयंकर संघर्षो में तपती, मजदूर वर्ग की हिमायत करती हुई नागार्जुन की काव्यधारा जनवादी परंपराओं में आगे बढ़ी है।"[12] नागार्जुन की कविता में एक आग है जो आम आदमी के शोषण को देखकर शोषक के विरुद्ध भड़क उठती है। वे समाज से तानाशाह का खात्मा चाहते हैं जिसमें लोलुपता, गुटबाजी, भ्रष्टाचार आदि के दुर्गुण समाहित हैं। यथा–"देश हमारा भूखा नंगा, घायल है बेकारी से /मिले न रोजी, भटके दर दर बने भिखारी से / निष्चय राज्य बदलना होगा, शोषक तानाषाही का/पद लोलुप दलबंदी का, भ्रष्टाचार तबाही का।"[13] नागार्जुन का स्पष्ट मानना था कि इसके मूल में आर्थिक समस्यायें ही हैं जो इन्हें पृथक करती है। पर देश का यह कटु यथार्थ है कि वर्षो से सामंतों ने, तो कभी जमींदारों ने, किसानों, मजदूरों का शोषण करके अपना पेट भरा है और आज भी वही परंपरा जारी है। बस आज शोषण करने के तौर–तरीकों में बदलाव आया है। नागार्जुन स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि इस लोकतंत्र में इन बेबस लोंगों की तस्वीर तब तक नहीं बदल सकती जब तक कि इन जमींदारों और सहूकारों का अंत नहीं हो जाता, कारण समाज का यही वह वर्ग है जो पूँजीवाद का समर्थन करता है। नागार्जुन सबसे पहले इनको समाज से निरस्त करना चाहते हैं। तभी सुधार की संभावना है। निस्संदेह ये सारे लोग समाज के बहुरूपिये हैं जो दिखाने के लिए ऊपर से भलेमानुस का चोला पहन लेते हैं पर अंदर ही अंदर ये कसाई से भी निष्ठुर तथा निर्दयी होते हैं। नागार्जुन की यह पंक्ति आज विषम परिथिति में भी किसानों के अधिकार के लिए तत्पर दिखाई पड़ती है–"जमींदार है साहूकार बनिया है व्यापारी है/अंदर अंदर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं सब घुस आए भरा पड़ा है, भारतमाता का मंदिर।"[14] कवि ऐसी विषम स्थिति को समाप्त करने के लिए निरंतर संघर्षरत रहा है और यही उनकी जीवटता का प्रमाण है। विजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है–"उनकी कविता में संघर्ष का लक्ष्य है–मेहनतकश लोगों द्वारा सत्ता पर अधिकार प्राप्त करना। उनकी कविता का नायक बहुत स्पष्ट है– जन।"[15]

नागार्जुन के काव्य का खुराक भारतीय परिवेश और उसका लोकजीवन है। सहज जीवन के पक्षपाती, शोषण की चक्की में पिसती हुई भारतीय जनता का, उसके रुढ़िवादी–अंधविश्वासी, सत्ता, मोह और व्यवस्था के छलछद्म का, भ्रष्टाचार और पाखंड का जैसा मूल्यांकन नागार्जुन के यहाँ मौजूद है वैसा शायद ही कहीं अन्यत्र मिले। नागार्जुन अपनी कविताओं के द्वारा हमारे समय के यथार्थ का अनुसंधान करते हुए एक सुन्दर भविष्य का स्वप्न गढ़ते चलते हैं। 'हरिजन गाथा' सामंतवादी मानसिकता और जातिवादी व्यवस्था के बीच पिस रहे श्रमरत दलितों की कारूणिक वेदना की जीवंतता है। यह काव्यानुभूति व्यवस्था और सत्ता की व्यवस्था पर व्यंग्य करती है जिसमें हरिजन शिशु के हथेलियों में पड़े निशान उसके जीवन के अतीत और भविष्य का निर्णय करते है। नागार्जुन की यही दृष्टि ही इन्हें अन्य पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों से बड़ा बनाती है।

नागार्जुन सत्ता, व्यवस्था एंव पूंजीवादी विनाशकारी शक्तियों के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त करने में नितांत अग्रणी रहे हैं। कारण समाज का यह वह वर्ग है जो आमजन के जीवन के साथ जोंक की तरह चिपके हुए है। नागार्जुन साफ तौर पर जानते थे कि जब तक पीड़ित लोग अपनी जमीन के मालिक नहीं बन जायेंगे तब तक इन गरीब बेबसों की स्थिति में सुधार नहीं आ सकता। नागार्जुन ने पूँजीवादी व्यवस्था की पोल किसानों की आर्थिक तंगी के माध्यम से खोलकर रख दी है–

"बीज नहीं है बैल नहीं है बरखा बिनु अकुलाते हैं
नहर रेट बढ़ गया खेत में पानी नहीं पटाते हैं
नहीं खेत से कनका भर भी दाना उपजा पाते हैं
पिछला कर्ज चूका न सके, साहू की झिड़की खाते हैं।"[16]

नागार्जुन की कविता महज कोरी घोषणा नहीं है अपितु उसमें कवि का युग संघर्ष बोलता है। नागार्जुन पूँजीपतियों को कटघरे में खड़ाकर उन्हें भला बुरा कहने से भी नहीं हिचकतें। नागार्जुन के कवि मन का दुःखी होना स्वाभाविक है कारण आजाद भारत में एक ओर रजत जयंती मनायी जा रही है वही आज जनता को तन ढकने के लिए शरीर पर फटे कपड़े तक नसीब नहीं होते है। 'घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती' कविता में कवि ने इसी सामाजिक यथार्थ को वाणी दी है–

"नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ बाट की रजत जयंती
शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयन्ती
अस्सी प्रतिशत दीन जनों की कष्ट–कथा है रजत जयन्ती
परदुख–कातर तपोधनो की विकट व्यथा है रजत जयन्ती।"[17]

निस्संदेह जहाँ भी जरूरत पड़ी नागार्जुन निडर भाव से अपनी कविताओं के द्वारा शोषक वर्ग की आलोचना करने में भी नहीं थकते। बिना किसी लाग–लपेट के आमजन की भाषा में ही पूँजीपतियों पर ठीक कबीर की भांति इनकी कविताएं आग उगलती है। विचारधाराएं उन्हें कहीं बांध नहीं पातीं। तभी तो वे नेहरू से लेकर इंदिरा, जेपी और मोरारजी तक की आलोचना में पीछे नहीं रहते। सीधे नाम लेकर कहते हैं–"इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको/बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को।" अथवा–"आओ रानी हम ढोएँगे पालकी/ यही हुई है राय जवाहर लाल की।"[18]

नागार्जुन की कविता आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मूलतः साधारण जनता के प्रति न्याय की मांग करती है। कारण जिस तरह से भूख और महंगाई का कुप्रभाव साधारण वर्ग पर पड़ा है उसमें देश के न जाने कितने अन्नदाता खुदखुशी कर रहे हैं तो वहीं अजानों से भरी बोरियाँ मालगोदामों में सड़ रही है। नागार्जुन ने इस विद्रूपता को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। यह कारूणिक सच है कि आजादी के इतने वर्षो के बाद देश की स्थिति में कोई तुलनात्मक अंतर नहीं आया। हाँ, इसके बीच कुछ चतुर बाहुबली प्रभु वर्ग में शामिल जरूर हो गये हैं। दरअसल यह व्यवस्था की बनी–बनाई साजिश है जहाँ मानवीय मूल्यों के लिए कोई जगह नहीं है। कवि के शब्दों में– 'हम महंगाई के मारे हुए लोग है/ हम, गैर–बराबरी के सताए हुए लोग। 'तभी तो कवि मजदूर राज चाहते हैं कवि कहता है कि–

"सेठ और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम
खेत–खान–दुकान–मिलें सरकार करेगी दखल तमाम
खेत–मजदूरों और किसानो में जमीन बँट जाएगी
x x x
x x x
नौकरशाही का यह रद्धी ढाँचा होगा चूरम–चूर"[19]

नागार्जुन की कवितायें भूमंडलीकृत समाज की सार्थक और न्यायपूर्ण जिंदगी की तलाश है, जहाँ आम जनता आजादी के इतने वर्षो बाद भी अपनी पूरी दुर्दशा में दिखलाई पड़ता है। वर्तमान दौर का यह भी एक सच है कि बाजारवाद और औद्योगीकरण ने पूरे विश्व को अपनी गिरफ्त में ले लिया है उसने जिन असंगतियों को जन्म दिया है उसका नतीजा है जातीय टकराहट, किसानों की आत्महत्यायें, श्रमिक वर्ग में असंतोष आदि। श्रमिकों की शोषण–व्यवस्था की यथार्थ–भूमि पर जागरूकता पैदा करना 'कब होगी इनकी दिवाली' कविता का उद्देश्य है। नागार्जुन की यह पंक्ति मजदूरों की मुक्ति की छटपटाहट को व्यक्त करती है– "इनका मुक्तिपर्व कब होगा/कब होगी इनकी दीवाली/चमकेंगी इनकी ललाट पर/कब ताजे कुमकुम की लाली।क्तपर्व कब होगा/ आज भूमंडलीकृत होता समाज जिसमें विश्व–ग्राम की चर्चा जोर पकड़ रही है जहाँ अमीर और गरीब में विभाजन होना स्वभाविक है। नागार्जुन की कविता इस विभाजन को एकता के सूत्र में बांधती है। नागार्जुन के व्यक्तित्व तथा कविताओं पर प्रकाश डालते हुए रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है कि "नागार्जुन जितने सचेत रूप से क्रांतिकारी है उतने अचेत रूप में भी। उनका क्रांतिकारीत्व एक ओर साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की प्रखर आलोचना में प्रकट होता है तो दूसरी ओर इनकी कला–चेतना हिंदी जातीयता के स्तर पर विभिन्न जनपदों की श्रमिक जनता की एकबद्धता में भी प्रकट करता है।"[21] नागार्जुन ने शोषित, दलित, उपेक्षित के पक्ष में खड़े होकर सांमतो, सत्ताधीशों, पूँजीपतियों को जबरदस्त लताड़ा है। उनका काव्यात्मक व्यंग्य तिलमिला देने वाला है उनकी काव्यानुभूति का दर्द सच्चा है ठीक कबीर के अनुरूप। यही कारण है कि इनकी कविता नवीन जीवन मूल्यों के प्रति कटिबद्ध है यह अपने समय की सजगता का प्रमाण भी है।

उत्तरआधुनिक समाज में प्रगतिशील चेतना संपन्न कवि बाबा नागार्जुन ने आम जनता के आशा–निराशा को अपने काव्य में पूरी तन्मयता के साथ तरजीह दी है। मानव जीवन का हर कोना वे छानते है प्रत्येक आखों के आंसुओं पर उनकी दृष्टि अटकी है। असाधारण आदमी को वे जितने नजदीक से जानते हैं उतना शायद ही कोई अन्य कवि जानता हो। तभी तो नागार्जुन की कविताओं में आम जनजीवन का सूक्ष्म निरीक्षण सहज रूप में उभर कर आया है।

संदर्भ–सूची

1. नागार्जुन रचनावली, शोभाकांत (संपादन–संयाजन): भाग–2, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2003. पृ0–130
2. नागार्जुन रचनावली, शोभाकांत (संपादन–संयोजन): भाग–1, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2003. पृ0–31
3. भट् प्रकाशचन्द्र, नागार्जुन जीवन और साहित्य, सेवासदन प्रकाशन रामपुरा प्रथम संस्करण, पृ0–48
4. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, पृ0 94

5. सामान्य जनसंदेश, सं0 ओमप्रकाश मिश्रा, पृ0–142
6. नागार्जुन रचनावली, भाग–1, पृ0 351
7. तिवारी अजय, नागार्जुन की कविता, दिवि पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली –32, पृ– 147
8. नागार्जुन रचनावली, भाग–1, पृ0–451
9. वही0– पृ0–301
10. वही0– पृ0–170
11. वही0– पृ0–226
12. तिवारी डा0 अनंतकीर्ति, समकालीन प्रतिनिधि कवि, साहित्य रत्नालय कानपुर। संस्करण 1975, पृ– 74
13. नागार्जुन रचनावली, भाग–1, पृ0–257
14. वही0– पृ0–105
15. नया पथ, सं.– चंचल चौहान, नागार्जुन विशेषांक, पृ0– 257
16. वही0– पृ0–230
17. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, पृ0–59
18. वही0– पृ0–81
19. नागार्जुन रचनावली, भाग–1, पृ0–101
20. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, पृ0–159
21. शर्मा रामविलास, नयी कविता और अस्तित्वाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 1975, पृ0– 141